

THE ECONOMIC TIMES

Date: 15-12-18

Justice Sen Must Go, or Be Impeached

ET Editorials



On Thursday, Justice S R Sen, the lone judge in the high court of Meghalaya, made history — albeit of a dubious kind. Pronouncing on an appeal for domicile, he said India should have declared itself a Hindu country at Partition, and not a secular state. He added, “I make it clear that nobody should try to make India as another Islamic country.... I am confident that only this government under PM Narendra Modi will understand the gravity

and will do the needful....” Thus, Sen has violated two of the most important tenets of the Constitution. The first is the fundamental right of every citizen to practice any faith or religion of her choice; the second is the principle of the judiciary maintaining an arm’s-length distance from the executive and legislature.

Sen’s ignorance of history is monumental: he seems unaware that our founding fathers agreed to Partition because they differed with Muslim League’s ‘two-nation theory’, based on the assumption that Hindus and Muslims cannot coexist. Despite occasional tensions, India remains home to citizens professing multiple faiths. In so doing, we have demonstrated virtues of coexistence, amity and goodwill, while Pakistan’s polity has spiralled into cycles of military rule, kleptocracy and Islamic fundamentalism. Sen’s views on how this government should behave are malicious. They breach the principle of separation of estates, so that each is a check on the others’ authority.

The only job of a court is to uphold and interpret law according to the Constitution. Sen has failed miserably at his job. He should be impeached. This is a complex process requiring parliamentarians to move a motion, for jurors to investigate guilt followed by two-thirds of MPs voting for impeachment. It is unwieldy, but if any judge deserves to be ousted, it is Sen.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 15-12-18

समस्याओं का नहीं असल हल

टी. एन. नाइनन



इस बात पर आम सहमति है कि किसानों की हताशा और रोजगार की कमी वे आर्थिक मुद्दे हैं जिनके चलते तीन राज्यों में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की सरकारों को शिकस्त खानी पड़ी। निश्चित तौर पर दोनों बातें आपस में जुड़ी हुई हैं। अगर युवाओं को कार्यालयों और फैक्टरियों में रोजगार मिलता तो भला कौन खेतों में काम करना चाहता। उनका पैसा परिवार की आय में सहयोग करने के काम

आता। परंतु फैक्टरियों में रोजगार है नहीं और कार्यालयीन कामों में अंग्रेजीदां उच्चवर्ण के लोगों का वर्चस्व है। अगर आप अपना घर-बार छोड़कर किसी दूसरे शहर में आते हैं तो जीवन बेहद कठिन है। शहरों में गांववासी निर्माण स्थलों पर काम करते हैं। उनमें से जो प्रशिक्षित होते हैं या अनुभव हासिल कर लेते हैं वे राजगीर या फिटर, बढ़ई या बिजली का काम करने वाले बन जाते हैं। उनमें से कई अन्य अत्यंत कम वेतन पर वॉचमैन या ड्राइवर का काम करते हैं। उनकी पत्नियां गांव में घर संभालती हैं या शहरों में घरेलू सहायिका के रूप में काम करती हैं। पुरुष एक कमरे में कई लोगों के साथ रहते हैं, बस किराया ज्यादा होने के कारण पैदल काम पर जाते हैं। इतनी कम कमाई में भी वे बचत करके कुछ पैसा अपने परिवार के पास भेजते हैं। उन्हें अक्सर अपने नियोक्ता से पैसे उधार लेने पड़ते हैं। शादी-ब्याह का कर्ज चुकाने या शहर में झुग्गी बनाने के लिए वे प्लिंग योजनाओं में पैसा लगाते हैं। घर बनाने का काम चरणबद्ध ढंग से होता है। पहले कच्ची दीवार की जगह ईंट की दीवार, फिर टिन की जगह पक्की छत, उसके बाद पक्का फर्श आदि। इस प्रक्रिया में एक दशक तक लग सकता है। उन्हें हर महीने कर्ज की किस्त चुकानी होती है।

ऐसी हालत में रहने के बावजूद पूंजी निर्माण गांवों में नहीं बल्कि शहरों में ही होता है। जो भाग्यशाली होते हैं उनके बच्चे डिप्लोमा आदि कर लेते हैं ताकि वे अपने माता-पिता से कुछ बेहतर काम कर सकें। मिसाल के तौर पर कार मैकेनिक, होटल में हाउसकीपिंग स्टाफ, डिलिवरी बॉय आदि जैसे काम। युवतियों को दुकानों में काम मिल जाता है या वे बूटीक आदि में काम करने लगती हैं। उनकी अंग्रेजी अच्छी न होने से वे अक्सर हताश रहती हैं और प्रायः अपने नियोक्ता की दया पर निर्भर रहती हैं। उनके पास कोई रोजगार सुरक्षा नहीं होती है और न ही चिकित्सा सुविधा। आधिकारिक न्यूनतम वेतन एक तरह से काल्पनिक है। इनके जीवन में तमाम कठिनाइयां हैं। ऐसे में कोई भी सरकारी नौकरी, निजी क्षेत्र की नौकरी से बेहतर ही लगती है। वहां वेतन अच्छा है और पेंशन भी मिलती है। परंतु सरकार ने काम को अनुबंध पर देना शुरू कर दिया। ये अनुबंधित कर्मचारी वर्षों तक काम करते रहते हैं। इस हकीकत में उलझे हुए आप राजनेताओं की ओर उम्मीद से देखते हैं क्योंकि वे बदलाव का वादा करते हैं। हर वर्ष एक करोड़ नए रोजगार देने का वादा किया जाता है, कहा जाता है कि नौकरी पाने के लिए किसी के पांव छूने की आवश्यकता नहीं होगी और व्यवस्था को संकटग्रस्त बनाने वाले भ्रष्ट लोगों से निपटा जाएगा। पांच वर्ष बाद हकीकत में बहुत कम बदलाव आता है। अगर अब कोई नौकरी में आरक्षण की मांग करता है और वह आपकी जाति का है तो आपका उसकी ओर झुकाव स्वाभाविक है। आपको लगता है कि इससे बदलाव आएगा। अगर कोई दल आपका कर्ज माफ करने को कहता है तो आप उसे वोट दे देते हैं। परंतु खेती का काम फिर भी मुश्किल बना रहता है। फसल की अच्छी कीमत भी दूर की कौड़ी बनी रहती है। आरक्षण से भी रोजगार में कोई खास इजाफा नहीं होता।

बट्टरैड रसेल का कहना था कि अधिकांश लोग निराशा का जीवन जीते हैं। परंतु युवा हार मानने को तैयार नहीं होते। कैथरीन बू ने इसे ही अंडरसिटी का नाम दिया था जहां से ओवर सिटी का आराम और खुशियां एक ऐसी दूरी पर नजर आती हैं जिसे पार नहीं किया जा सकता है? सामूहिक पहचान आपके जीवन को सार्थकता प्रदान कर सकती है इसलिए आपका राजनीतिक दुनिया की ओर झुकाव हो जाता है। पशु व्यापारियों को घेरकर पैसे बनाना, लोगों के साथ मारपीट करना आदि इसी कड़ी का हिस्सा हैं। हम उन्हें दोष दे सकते हैं लेकिन हमारी राजनीति उन्हें दे भी क्या सकती है?

स्वामीनाथन अय्यर ने इसे ही नई दिल्ली सहमति कहा था। यानी वोट पाने के लिए सब्सिडी और अन्य लोकलुभावन काम करना और लोगों को खुश रखना। कटु सच्चाई यह है कि देश की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के पास समस्याओं का कोई वास्तविक हल नहीं है।
